अभागा बुनकर

एक नगर में सोमिलक नाम का जुलाहा रहता था। विविध प्रकार के रंगीन और सुन्दर वस्त्र बनाने के बाद भी उसे भोजन-वस्त्र मात्र से अधिक धन कभी प्राप्त नहीं होता था। अन्य जुलाहे मोटा-सादा कपडा बुनते हुए धनी हो गये थे। उन्हें देखकर एक दिन सोमलिक ने अपनी पत्नी से कहा, "प्रिये! देखो, मामूली कपडा बुनने वाले जुलाहों ने भी कितना धन-वैभव संचित कर लिया है और मैं इतन सुन्दर, उत्कृष्ट वस्त्र बनाते हुए भी आज तक निर्धन ही हूँ। प्रतीत होता है यह स्थान मेरे लिये भाग्यशाली नहीं है; अतः विदेश जाकर धनोपार्जन करुँगा ।"

सोमिलक-पत्नी ने कहा, "प्रियतम ! विदेश में धनोपार्जन की कल्पना मिथ्या स्वप्न से अधिक नहीं। धन की प्राप्ति होनी हो तो स्वदेश में ही हो जाती है। न होनी हो तो हथेली में आया धन भी नष्ट हो जाता है। अतः यहीं रहकर व्यवसाय करते रहो, भाग्य में लिखा होगा तो यहीं धन की वर्षा हो जायगी।"

सोमिलक ने कहा, "भाग्य-अभाग्य की बातें तो कायर लोग करते हैं। लक्ष्मी उद्योगी और पुरुषार्थी शेर-नर को ही प्राप्त होती है। शेर को भी अपने भोजन के लिये उद्यम करना पडता है। मैं भी उद्यम करुँगा; विदेश जाकर धन-संचय का यत्न करुँगा।"

यह कहकर सोमिलक वर्धमानपुर चला गया। वहाँ तीन वर्षों में अपने कौशल से ३०० सोने की मुहरें लेकर वह घर की ओर चल दिया। रास्ता लम्बा था। आधे रास्ते में ही दिन ढल गया, शाम हो गई । आस-पास कोई घर नहीं था। एक मोटे वृक्ष की शाखा के ऊपर चढकर रात बिताई। सोते-सोते स्वप्न आया कि दो भयंकर आकृति के पुरुष आपस में बात कर रहे हैं। एक ने कहा, "हे पौरुष! तुझे क्या मालूम नहीं है कि सोमिलक के पास भोजन-वस्त्र से अधिक धन नहीं रह सकता, तब तूने इसे ३०० मुहरें क्यों दीं?" दूसरा बोला, "हे भाग्य! मैं तो प्रत्येक पुरुषार्थी को एक बार उसका फल दूंगा ही। उसे उसके पास रहने देना या नहीं रहने देना तेरे अधीन है।"

स्वप्न के बाद सोमिलक की नींद खुली तो देखा कि मुहरों का पात्र खाली था। इतने कष्टों से संचित धन के इस तरह लुप्त हो जाने से सोमिलक बडा दुःखी हुआ, और सोचने लगा, "अपनी पत्नी को कौनसा मुख दिखाऊँगा, मित्र क्या कहेंगे?" यह सोचकर वह फिर वर्धमानपुर को ही वापिस आ गया । वहाँ दित-रात घोर परिश्रम करके उसने

वर्ष भर में ही ५०० मुहरें जमा करलीं। उन्हें लेकर वह घर की ओर जा रहा था कि फिर आधे रास्ते में रात पड गई। इस बार वह सोने के लिये ठहरा नहीं; चलता ही गया। किन्तु चलते-चलते ही उसने फिर उन दोनों, पौरुष और भाग्य को पहले की तरह बात-चीत करते सुना। भाग्य ने फिर वही बात कही कि "हे पौरुष! क्या तुझे मालूम नहीं कि सोमिलक के पास भोजन वस्त्र से अधिक धन नहीं रह सकता। तब, उसे तूने ५०० मुहरें क्यों दीं?" पौरुष ने वही उत्तर दिया, "हे भाग्य ! मैं तो प्रत्येक व्यवसायी को एक बार उसका फल दूंगा ही, इससे आगे तेरे अधीन है कि उसके पास रहने दे या छीन ले।" इस बातचीत के बाद सोमिलक ने जब अपनी मुहरों वाली गठरी देखी तो वह मुहरों से खाली थी ।

इस तरह दो बार खाली हाथ होकर सोमिलक का मन बहुत दुःखी हुआ। उसने सोचा, "इस धन-हीन जीवन से तो मृत्यु ही अच्छी है। आज इस वृक्ष की टहनी से रस्सी बाँधकर उस पर लटक जाता हूँ और यहीं प्राण दे देता हूँ।"

गले में फन्दा लगाकर , उसे टहनी से बाँध कर जब वह लटकने ही वाला था कि उसे आकाश-वाणी हुई, "सौमिलक ! ऐसा दुःसाहस मत कर। मैंने ही तेरा धन चुराया है तेरे भाग्य में भोजन-वस्त्र मात्र से अधिक धन का उपभोग नहीं लिखा। व्यर्थ के धन-संचय में अपनी शक्तियाँ नष्ट मत कर। घर जाकर सुख से रह। तेरे साहस से तो मैं प्रसन्न हूँ; तू चाहे तो एक वरदान माँग ले। मैं तेरी इच्छा पूरी करूँगा।"

सोमिलक ने कहा, "मुझे वरदान में प्रचुर धन दे दो।"

अदृष्ट देवता ने उत्तर दिया, "धन का क्या उपयोग? तेरे भाग्य में उसका उपभोग नहीं है। भोग-रहित धन को लेकर क्या करेगा ?"

सोमिलक तो धन का भूखा था, बोला, "भोग हो या न हो, मुझे धन ही चाहिये। बिना उपयोग या उपभोग के भी धन कि बडी महिमा है। संसार में वही पूज्य माना जाता है, जिसके पास धन का संचय हो। कृपण और अकुलीन भी समाज में आदर पाते हैं ।

सोमिलक की बात सुनने के बाद देवता ने कहा, "यदि यही बात है, धन की इच्छा इतनी ही प्रबल है तो तू फिर वर्धमानपुर चला जा। वहां दो बनियों के पुत्र हैं; एक गुप्तधन, दूसरा उपभुक्त धन। इन दोनों प्रकार के धनों का स्वरुप जानकर तू किसी एक का वरदान मांगना। यदि तू उपभोग की योग्यता के बिना धन चाहेगा तो तुझे गुप्त धन दे दूंगा और यदि खर्च के लिये धन चाहेगा तो उपभुक्त धन दे दूंगा।"

यह कहकर वह देवता लुप्त हो गया। सोमिलक उसके आदेशानुसार फिर वर्धमानपुर पहुँचा। शाम हो गई थी। पूछता-पूछता वह गुप्तधन के घर पर चला गया। घर पर उसका किसी ने सत्कार नहीं किया। इसके विपरीत उसे भला-बुरा कहकर गुप्तधन और उसकी पत्नी ने घर से बाहिर धकेलना चाहा। किन्तु, सोमिलक भी अपने संकल्प का पक्का था। सब के विरुद्ध होते हुए भी वह घर में घुसकर जा बैठा। भोजन के समय उसे गुप्तधन ने रुखीसूखी रोटी दे दी। उसे खाकर वह वहीं सो गया। स्वप्न में उसने फिर वही दोनों देव देखे। वे बातें कर रहे थे। एक कह रहा था, "हे पौरुष! तूने गुप्तधन को भाग्य से इतना अधिक धन क्यों दे दिया कि उसने सोमिलक को भी रोटी देदी।"
पौरुष ने उत्तर दिया, "मेरा इसमें दोष नहीं। मुझे पुरुष के हाथों धर्म-पालन करवाना ही है, उसका फल देना तेरे अधीन है।"
दूसरे दिन गुप्तधन पेचिश से बीमार हो गया और उसे उपवास करना पडा। इस तरह उसकी क्षतिपूर्ति हो गई ।
सोमिलक अगले दिन सुबह उपभुक्त धन के घर गया। वहां उसने भोजनादि द्वारा उसका सत्कार किया। सोने के लिये सुन्दर शय्या भी दी। सोते-सोते उसने फिर सुना, वही दोनों देव बातें कर रहे थे। एक कह रहा था, "हे पौरुष! इसने सोमिलक का सत्कार करते हुए बहुत धन व्यय कर दिया है। अब इसकी क्षतिपूर्ति कैसे होगी?"
दूसरे ने कहा, "हे भाग्य! सत्कार के लिये धन व्यय करवाना मेरा धर्म था, इसका फल देना तेरे अधीन है।"
सुबह होने पर सोमिलक ने देखा कि राज-दरबार से एक राज-पुरुष राज-प्रसाद के रुप में धन की भेंट लाकर उपभुक्त धन को दे रहा था।
यह देखकर सोमिलक ने विचार किया कि "यह संचय-रहित उपभुक्त धन ही गुप्तधन से श्रेष्ठ है। जिस धन का दान कर दिया जाय या सत्कार्यों में व्यय कर दिया जाय वह धन संचित धन की अपेक्षा बहुत अच्छा होता है।"

यह देखकर सोमिलक ने विचार किया कि "यह संचय-रहित उपभुक्त धन ही गुप्तधन से श्रेष्ठ है। जिस धन का दान कर दिया जाय या सत्कार्यों में व्यय कर दिया जाय वह धन संचित धन की अपेक्षा बहुत अच्छा होता है।"

अभागा बुनकर

एक नगर में सोमिलक नाम का जुलाहा रहता था। विविध प्रकार के रंगीन और सुन्दर वस्त्र बनाने के बाद भी उसे रोटी-वस्त्र मात्र से अधिक धन कभी प्राप्त नहीं होता था। अन्य जुलाहे मोटे-सादे कपड़े बुनते हुए भी धनी हो गये थे। उनको देखकर एक दिन सोमिलक ने अपनी पत्नी से कहा, "प्रिये! देखो, मामूली कपड़ा बुनने वाले जुलाहों ने भी कितना धन-वैभव संचित कर लिया है और मैं इतने सुन्दर, उत्कृष्ट वस्त्र बनाते हुए भी आज तक निर्धन ही हूँ। प्रतीत होता है यह स्थान मेरे लिये भाग्यशाली नहीं है; अतः विदेश जाकर धनोपार्जन करूँगा।"

सोमिलक-पत्नी ने कहा, "प्रियतम! विदेश में धनोपार्जन की कल्पना मिथ्या स्वप्न मात्र है। धन की प्राप्ति होनी हो तो स्वदेश में भी हो जाती है; न होनी हो तो हथेली में आया धन भी नष्ट हो जाता है। अतः यहीं रहकर व्यवसाय करते रहो, भाग्य में लिखा होगा तो यहीं धन की वर्षा हो जायेगी।"

सोमिलक ने कहा, "भाग्य-अभाग्य की बातें तो कायर लोग करते हैं। लक्ष्मी उद्योगी और पुरुषार्थी नर-नारी को ही प्राप्त होती है। शेर को भी अपने भोजन के लिये उद्यम करना पड़ता है। मैं भी उद्यम करूँगा; विदेश जाकर धन-संचय का यत्न करूँगा।"

यह कहकर सोमिलक वर्धमानपुर चला गया। वहाँ तीन वर्षों में अपने कौशल से ३०० मोहरें लेकर वह घर की ओर चल दिया। रास्ता लम्बा था। आधे रास्ते में ही दिन ढल गया, शाम हो गई। आस-पास कहीं घर नहीं था। एक मोटे वृक्ष की शाखा के ऊपर चढ़कर रात बिताई। सोते-सोते स्वप्न आया कि दो भयंकर आकृति के पुरुष आपस में बातें कर रहे हैं। एक ने कहा, "हे पौरुष! तुझे क्या मालूम नहीं है कि सोमिलक के पास रोटी-वस्त्र से अधिक धन नहीं रह सकता, तब तूने इसे ३०० मोहरें कैसे दीं?" दूसरा बोला, "हे भाग्य! मैं प्रत्येक पुरुषार्थी को एक बार उसका फल दूँगा ही। उसे उसके पास रहने देना या नहीं रहने देना तेरे अधीन है।"

स्वप्न के बाद सोमिलक की नींद खुली तो देखा कि मोहरों का पात्र खाली था। इतने कष्टों से संचित धन के यों नष्ट हो जाने से सोमिलक बड़ा दुःखी हुआ, और सोचने लगा, "अपनी पत्नी को कैसे मुख दिखाऊँगा, मित्र क्या कहेंगे?" यह सोचकर वह फिर वर्धमानपुर को ही वापिस आ गया। वहाँ दिन-रात घोर परिश्रम करके उसने वर्ष भर में ही ५०० मोहरें जमा कर लीं। उन्हें लेकर वह घर की ओर जा रहा था कि फिर आधे रास्ते में रात पड़ गई। इस बार वह सोने के लिये ठहरा नहीं; चलता ही गया। किन्तु चलते-चलते ही उसने फिर उन दोनों, पौरुष और भाग्य के पहले की तरह बात-चीत करते सुना। भाग्य ने फिर वही बात कही कि "हे पौरुष! क्या तुझे मालूम नहीं कि सोमिलक के पास रोटी-वस्त्र से अधिक धन नहीं रह सकता। तब, उसे तूने ५०० मोहरें कैसे दीं?" पौरुष ने वही उत्तर दिया, "हे भाग्य! मैं प्रत्येक व्यवसायी को एक बार उसका फल दूँगा ही, उससे आगे तेरे अधीन है कि उसके पास रहने दे या छीन ले।" इस बातचीत के बाद सोमिलक ने जब अपनी मोहरों वाली गठरी देखी तो वह मोहरों से खाली थी।

इस तरह दो बार खाली हाथ होकर सोमिलक का मन बहुत दुःखी हुआ। उसने सोचा, "इस धन-हीन जीवन से तो मृत्यु ही अच्छी है। आज इस वृक्ष की टहनी से रस्सी बाँधकर उस पर लटक कर यहीं प्राण दे देता हूँ।"

गले में फंदा लगाकर, उसे टहनी से बाँध कर जब वह लटकने ही वाला था कि उसे आकाश-वाणी हुई, "सोमिलक! ऐसा दुःसाहस मत कर। मैंने ही तेरा धन चुराया है

तेरे भाग्य में भोजन-वस्त्र मात्र से अधिक धन का उपभोग नहीं लिखा। व्यर्थ के धन-संचय में अपनी शक्ति नष्ट न कर। अब घर जाकर सुख से रह। तेरे साहस से तो मैं प्रसन्न हूँ; तू चाहे तो एक वरदान माँग ले। मैं तेरी इच्छा पूरी करूँगा।"

सोमिलक ने कहा, "मुझे वरदान में प्रचुर धन दे दो।"

अदृष्ट देवता ने उत्तर दिया, "धन का क्या उपयोग? तेरे भाग्य में उसका उपभोग नहीं है। भोग-रहित धन को लेकर क्या करोगे?"

सोमिलक तो धन का भूखा था, बोला, "भोग हो या न हो, मुझे धन ही चाहिए। बिना उपयोग या उपभोग के भी धन की बड़ी महिमा है। संसार में वही पूजा जाता है, जिसके पास धन का संचय हो। कृपण और अकुलीन भी समाज में आदर पाते हैं।"

सोमिलक की बात सुनकर देवता ने कहा, "यदि यही बात है, धन की इच्छा इतनी ही प्रबल है तो तू फिर वर्धमानपुर चला जा। वहाँ दो बनिये के पुत्र हैं; एक गुप्तधन, दूसरा उपभुक्तधन। इन दोनों प्रकार के धन के स्वरूप देखकर तू किसी एक का वरदान माँगना। यदि तू उपभोग की योग्यता के बिना धन चाहेगा तो तुझे गुप्तधन दे दूँगा और यदि व्यय के लिये धन चाहेगा तो उपभुक्तधन दे दूँगा।"

यह कहकर वह देवता लुप्त हो गया। सोमिलक उसके निर्देशानुसार फिर वर्धमानपुर पहुँचा। शाम हो गई थी। पूछते-पूछते वह गुप्तधन के घर पर चला गया। घर पर उसका किसी ने सत्कार नहीं किया। इसके विपरीत उसे भला-बुरा कहकर गुप्तधन और उसकी पत्नी ने घर से बाहर निकालना चाहा। किन्तु सोमिलक भी अपने संकल्प का पक्का था। सब के विरुद्ध होते हुए भी वह घर में घुसकर बैठ गया। भोजन के समय उसे गुप्तधन ने रूखी-सूखी रोटी दे दी। उसे खाकर वह वहीं सो गया। स्वप्न में उसने फिर वही दोनों देव देखे। वे बात कर रहे थे। एक कह रहा था, "हे पौरुष! तूने गुप्तधन के भाग्य से इतना अधिक धन क्यों दे दिया कि उसने सोमिलक को भी रोटी दे दी।" पौरुष ने उत्तर दिया, "मेरा इसमें दोष नहीं। मुझे पुरुष के हाथ धर्म-पालन करवाना ही है, उसका फल देना तेरे अधीन है।"

दूसरे दिन गुप्तधन पेचिश से बीमार हो गया और उसे उपवास करना पड़ा। इस तरह उसकी क्षतिपूर्ति हो गई।

सोमिलक अगले दिन सुबह उपभुक्तधन के घर गया। वहाँ उसने भोजनादि द्वारा उसका सत्कार किया। सोने के लिये सुन्दर शय्या भी दी। सोते-सोते उसने फिर सुना, वही दोनों देव बात कर रहे थे। एक कह रहा था, "हे पौरुष! इसने सोमिलक का सत्कार करते हुए बहुत धन व्यय कर दिया है। अब इसकी क्षतिपूर्ति कैसे होगी?"

दूसरे ने कहा, "हे भाग्य! सत्कार के लिये धन व्यय करवाना मेरा धर्म था, उसका फल देना तेरे अधीन है।"

सुबह होने पर सोमिलक ने देखा कि राज-दरबार से एक राज-पुरुष राज-प्रसाद के रूप में धन की भेंट लाकर उपभुक्तधन को दे रहा था।

यह देखकर सोमिलक ने विचार किया कि "यह संचय-रहित उपभुक्तधन ही गुप्तधन से श्रेष्ठ है। जिस धन का दान कर दिया गया या सत्कार में व्यय कर दिया गया वह धन संचित धन की अपेक्षा बहुत अच्छा होता है।"

यह देखकर सोमिलक ने विचार किया कि "यह संचय-रहित उपभुक्तधन ही गुप्तधन से श्रेष्ठ है। जिस धन का दान कर दिया गया या सत्कार में व्यय कर दिया गया वह धन संचित धन की अपेक्षा बहुत अच्छा होता है।"

अनुवाद - विष्णु कौल एला